International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 9 Issue 5, Sept-Oct, 2021, Impact Factor: 7.326

स्वामी महावीर के शैक्षिक विचारों की उपयोगिता व उपादेयता

दीप्ति[1], प्रो. ऊषा तिवारी[2]

[1]शोध छात्रा, शिक्षा विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ झारखण्ड
[2]शोध निर्देशिका व आचार्य, शिक्षा विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ झारखण्ड

सारांश

मानव–व्यक्तिव का विकास शिक्षा पर आधारित होता है, किन्तु शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग शिक्षा का लक्ष्य विद्या प्राप्ति को मानते हैं तो कुछ लोग चरित्र का उन्नयन तथा मानव जीवन का सर्वांगीण विकास बताते हैं, परन्तु सही अर्थों में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को विषय का ज्ञाता बनाने के अतिरिक्त मानसिक, शारीरिक व नैतिक– सभी दृष्टियों से योग्य, सदाचारी व स्वावलम्बी बनाना है। दूसरे शब्दों में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान द्वारा बुद्धि–विकास अथवा विवेक जागृत करना है जिससे मनुष्य प्रत्येक विषय पर स्वयं निर्णय ले सके और उसका दृढ़ता से पालन कर सके। शिक्षा मानव का अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी विकास करती है। मनुष्य के चहुंमुखी विकास के लिए शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य का भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, चारित्रिक, सामाजिक विकास सम्भावित है। व्यक्ति में आत्मविश्वास, विनम्रता, धैर्य, क्षमा, सहिष्णुता आदि गुणों को विकसित करना ही शिक्षा का उद्देश्य है, शिक्षा के उद्देश्य को बताते हुए डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर ने लिखा है– भारत की आदि कालीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य चरित्रिक का संगठन, व्यक्तित्व का निर्माण, प्राचीन संस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों को सम्यक करने के लिए उदीयमान पीढ़ी का प्रशिक्षण था।[1]

जैन परम्परा में शिक्षा–

भारतीय संस्कृति अध्यात्ममूलक संस्कृति है जिसमें दो प्रकार की संस्कृतियाँ समान रूप से प्रवाहित हो रही हैं– ब्राह्मण और श्रमण। श्रमण–संस्कृति की जैन विचारधारा पूर्णरूपेण विशुद्ध साधनों पर आधारित है। जैन परम्परा में शिक्षा को 2 भागों में विभाजित किया गया है– (1) आध्यात्मिक शिक्षा (2) लौकिक शिक्षा।

जैन शिक्षा आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम तथा लौकिक उन्नति को द्वितीय स्थान पर रखती है। मोक्षोपयोगी ज्ञान अर्थात मोक्ष को केन्द्र मानकर जीवन और जगत आदि सम्पूर्ण ज्ञेयतत्त्व का ज्ञान आध्यात्मिक शिक्षा के अन्तर्गत आता है तथा जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा प्राप्त करना लौकिक शिक्षा कहलाता है। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत पुरुषों की 72 तथा स्त्रियों की 64 कलाओं का समावेश है।

आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य–

जैन शिक्षा का मूल उद्देश्य आत्मा की चरम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करना अर्थात आध्यात्मिक चरम पद की उपलब्धि तथा मानव में सुप्त अन्तर्निहित आत्मशक्तियों का विकास करता है। व्यक्तित्व के चरम विकास की अवस्था को ही जैन दर्शन में मुक्ति कहा गया है।[2] मन, वचन और शरीर से किये गये प्रत्येक कर्म – अकर्म का शुभ–अशुभ कर्मबन्ध होता है। जब जीव सच्चे ज्ञान द्वारा अपने कर्मों को क्षीण करता है तब परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जैसे धनार्थी पुरुष राजा को जानकर उसके प्रति श्रद्धा करता है, फिर प्रयत्नपूर्व उसका अनुसरण कर सुन्दर रीति से उसकी सेवा करता है, तब कहीं वह धन उपलब्ध करने में सफल होता है, वैसे ही मोक्षार्थी को जीव रूपी राजा को सम्यक् प्रकार से जानकर तदनुरुप प्रवृत्ति करनी चाहिये, तब कहीं वह आत्मा की उपलब्धि में सफल होता है। अतः कहा जा सकता है कि वासना और उपाम प्रवृत्तियों के स्थान पर आत्म नियंत्रण और संयम की भावना को जागृत करना जैन शिक्षा का मूल उद्देश्य है ।

आध्यात्मिक शिक्षा के विषय–

संसार में अनन्त प्राणी हैं और वे सभी सुख के अभिलाषी हैं। यद्यपि सभी की सुखकामना एक सी नहीं होती है। पं0 सुखलाल संघवी ने सुखकामी प्राणियों के सुख के आधार पर दो वर्ग बताये हैं– पहले वर्ग में अल्प विकास वाले ऐसे प्राणी आते हैं जिनके सुख की कल्पना बाह्य अर्थात भौतिक साधनों की प्राप्ति में सुख न मानकर आध्यात्मिक गुणों की प्राप्ति में सुख मानते हैं।[3] दोनों में यही अन्तर है कि पहला सुख पराधीन है और दूसरा स्वाधीन लेकिन जब तक मनुष्य पराधीन अर्थात सजीव और निर्जीव पदार्थों में आसक्ति रखता है, तब तक वह दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। आचारांग में कहा गया है कि कामनाओं का पूर्ण होना असम्भव है और जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता।[4] कामेच्छुक मनुष्य शोक किया करता है, सन्ताप और परिताप उठाया करता है। जब तक मानव जीवन में आसक्ति बनी हुई है, मानवीय दुःख बने हुए हैं।[10] इन दुःखों से छुटकारा तभी मिलता है जब मानव सांसारिक विषयों से निवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए जो प्रक्रियाएँ अपनायी जाती हैं, वे शनिवृत्तित्रश कहलाती हैं तथा सांसारिक बन्धनों की ओर ले जाने वाली सभी क्रियाएँ प्रवृत्ति कहलाती है।[9]

मोक्ष प्राप्ति के मार्ग–

उमास्वाति ने मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग बताये हैं– सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और
सम्यक चरित्र इन्हें त्रिरत्न के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इन्हें शिक्षा–साधना का कल्याण पथ माना गया है। त्रिरत्न मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। शिक्षा जगत में साधनों का विशुद्ध होना ही जरूरी है, क्योंकि साधन के विशुद्ध होने पर ही विशुद्ध साध्य की प्राप्ति होती है। उपरोक्त तीनों साधनों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है–

सम्यक दर्शन–

यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना सम्यक दर्शन कहलाता है।[7] जैन दर्शन में सात तत्त्व स्वीकार किये गये हैं– जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन्हीं सात तत्त्वों के प्रति श्रद्धा रखना सम्यक दर्शन है।[8]कुछ लोगों में तो यह स्वभावतः विद्यमान रहता है और कुछ इसे विद्योपार्जन एवं अभ्यास के द्वारा सीख भी सकते हैं।

सम्यक ज्ञान–

सम्यक ज्ञान में जीव, अजीव आदि मूल तत्त्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान जीव में सदा विद्यमान रहता है और जब उस ज्ञान में सम्यक्त्व का आविर्भाव होता है तब वह् सम्यक ज्ञान कहलाता है। सम्यक ज्ञान का अर्थ प्रमाण द्वारा यथार्थ ज्ञान से नहीं है, बल्कि मिथ्या दृष्टि के निवारण से है। मिथ्या–दृष्टि का निवारण मोक्ष में सहायक होता है। सम्यक ज्ञान असन्दिग्ध दोषरहित होता है।

सम्यक चरित्र–

हिंसादि दोषों का त्याग और अहिंसादि महाव्रतों का पालन सम्यक चरित्र कहलाता है। पं0 सुखलाल संघवी के अनुसार सम्यक ज्ञान पूर्वक काषायिक भाव अर्थात राग–द्वेष और योग मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया की निवृत्ति से होनेवाला माध्यम हैं। मैत्री, कारूण्य, माध्यस्थ्य आदि भावनाओं का चिन्तन तथा क्षमा, मार्दवादि दश धर्मों का पालन व मदिरा–मांसादि सप्त दुर्ब्यसनों का परित्याग इन साधनों की पुष्टि करता है। सम्यक चरित्र के अंगों का अलग–अलग विवेचन निम्न रूप से है–
अहिंसा – सामान्यतया अहिंसा का अर्थ श्न हिंसा अहिंसाश या शहिंसा विरोधिनी
अहिंसाश से लिया जाता है। लेकिन जैनियों के

मतानुसार–

किसी भी जीवन की तीन योग और तीन करण से हिंसा न करना अहिंसा है। तीन
योग अर्थात मन, वचन और काय तथा तीन करण अर्थात करना, करवाना और
अनुमोदन करना।11 इसे इस प्रकार समझा जा सकता है–
(1) मन से हिंसा न करना।
(2) मन से हिंसा न करवाना।
(3) मन से हिंसा का अनुमोदन न करना।
(1) वचन से हिंसा न करना ।
(2) वचन से हिंसा न करवाना।
(3) वचन से हिंसा का अनुमोदन न करना।
(1) काय से हिंसा न करना ।
(2) काय से हिंसा न करवाना।
(3) काय से हिंसा का अनुमोदन न करना।

सन्दर्भ

1. तत्त्वार्थसूत्रश, विवे0 पं0 सुखलालसंघवी, 102
2. वही, पृ0, 10
3. चित्तमन्तचितंवापरिगिच्झकिसामपि। अत्रंवाअणुजाणाईएवंदुक्खाणमुच्चई।। श्सूत्रकृ तांगश, 112
4. कामादुरतिक्कमाजीवियंदुप्पडिबूहगं।कामकामीखलुअयंपुरिसेसेसोयतिजूरतितिप्प तिपरितिष्पति। –श्आचारांगश, 290
5. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।श्तत्त्वार्थसूत्रश, 11
6. तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनम् । वही, 12
7. तत्त्वार्थाधिगमश, 113

8. द्रव्यसंग्रहश, श्लोक 42
9. तत्त्वार्थसूत्र, पृ0 2
10. जैन–धर्ममेंअहिंसाश, पृ0 184
11. प्रश्नव्याकरणश, पृ0, 618
12. तवेसुवाउत्तमंबंभचेरं।सूत्रकृतांगसूत्र, उद्धृतश्प्रश्नव्याकरणश,हेमचन्द्रजीमहाराज, पृ0, 716
13. मूर्छापरिग्रहः।'तत्त्वार्थसूत्रश, पृ0, 712